# उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल

**सिविल रिवीजन (दीवानी निगरानी) संख्या 165 वर्ष 2019**

**राम अवतार जिंदल** निगरानीकर्ता/रिवीजनकर्ता

बनाम

**मानव भारती स्कूल, मसूरी एंड एंजल्स हिल्स देहरादून और अन्य** प्रतिवादी

श्री एस. के. मंडल, रिवीजनकर्ता के अधिवक्ता।

## निर्णय

**माननीय लोक पाल सिंह, जे.**

प्रस्तुत सिविल रिवीजन, सीपीसी के खंड 115 के अंतर्गत, प्रथम अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश (सी.डि.), देहरादून द्वारा मूल वाद सं. 82 वर्ष 2014 मे पारित आदेश दिनांक 11.10.2019 के विरुद्ध निर्देशित किया जाता है, जिसमें उत्तरदाताओं/प्रतिवादियों द्वारा सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के अंतर्गत किए गए आवेदन को स्वीकार किया गया है।

**2.** मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि वादी/रिवीजनकर्ता ने उत्तरदाताओं/प्रतिवादियों के विरुद्ध अनिवार्य निषेधाज्ञा, बिक्री विलेख को रद्द करने और पट्टा विलेख की डिक्री के लिए मुकदमा दायर किया। उत्तरदाताओं/प्रतिवादियों ने मुकदमे का विरोध किया और लिखित बयान दायर किया। निचली विचारण न्यायालय ने मुद्दों को तैयार करने के लिए 05.07.2017 के लिए मुकदमा तय किया। यद्यपि उक्त तिथि पर, उत्तरदाताओं/प्रतिवादियों ने लिखित बयान में कुछ संशोधनों की मांग करते हुए सीपीसी की खंड 151 के साथ पठित सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के अंतर्गत एक आवेदन दायर किया। रिवीजनकर्ता/वादी ने संशोधन आवेदन पर अपनी आपत्तियाँ दायर कीं। पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने

पश्चात विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा, 1,000/- की लागत के साथ संशोधन आवेदन की अनुमति दी। ऐसा करते समय, निचली विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष दर्ज किया कि प्रतिवादी द्वारा माँगा गया संशोधन औपचारिक प्रकृति का है और मुकदमे की प्रकृति को नहीं बदलता है और यह वादी के लिए कोई पूर्वाग्रह भी पैदा नहीं करता है।

**3.** मैंने रिवीजनकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेख पर लाई गई पूरी सामग्री का अध्ययन किया है।

**4.** रिवीजनकर्ता/वादी के विद्वान वकील प्रस्तुत करेंगे कि संशोधन आवेदन को अनुमति देते समय निचली विचारण ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया है कि संशोधन आवेदन उत्तरदाताओं/प्रतिवादियों द्वारा विलंबित चरण में दायर किया गया और इसकी अनुमति देने से मुकदमा नए सिरे से शुरू होगा। वह अग्रेतर प्रस्तुत करेगा कि प्रतिवादी ने एक नया मामला स्थापित किया है और सम्पति पर अधिकार का दावा किया है और असंगत और विरोधाभासी याचिकाएं ली हैं। उन्होंने अग्रेतर कहा कि निचली विचारण न्यायालय ने बहुत ही अनौपचारिक तरीके से संशोधन की अनुमति दी है। अपनी दलीलों का समर्थन करने के लिए, वह **(2009) 10 एस. सी. सी. 84** में रिपोर्ट किए गए **रेवजीतु बिल्डर्स एंड डेवलोपर्स बनाम नारायणस्वामी एंड संस और अन्य** के मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब करेंगे। वह पैराग्राफ 63 और 64 का उल्लेख करेंगे, जो इस प्रकार हैंः

"63. अंग्रेजी और भारतीय दोनों मामलों का आलोचनात्मक विश्लेषण करने पर, कुछ बुनियादी सिद्धांत सामने आते हैं जिन्हें संशोधन के लिए आवेदन को अनुमति देते या अस्वीकार करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिएः

(1) क्या माँगा गया संशोधन मामले के उचित और प्रभावी निर्णय के लिए अनिवार्य है;

(2) संशोधन के लिए आवेदन वास्तविक है या दुर्भावनापूर्ण है;

(3) संशोधन दूसरे पक्ष के लिए ऐसा पूर्वाग्रह पैदा नहीं करना चाहिए जिसे धन के संदर्भ में पर्याप्त रूप से मुआवजा नहीं दिया जा सकता है;

(4) संशोधन से इनकार करने से वास्तव में अन्याय होगा या कई मुकदमेबाजी होगी;

(5) क्या प्रस्तावित संशोधन संवैधानिक या मौलिक रूप से मामले की प्रकृति और चरित्र को बदल देता है; और

(6) एक सामान्य नियम के रूप में, न्यायालय को संशोधनों को अस्वीकार कर देना चाहिए यदि संशोधित दावों पर एक नया मुकदमा आवेदन की तिथि पर सीमा द्वारा वर्जित किया जाएगा।

ये कुछ महत्वपूर्ण कारक हैं जिन्हें आदेश 6 नियम 17 के अंतर्गत दायर आवेदन पर विचार करते समय ध्यान में रखा जा सकता है। ये मात्र उदाहरणात्मक हैं और संपूर्ण नहीं हैं।

64. आदेश VI नियम 17 के अंतर्गत किए गए आवेदन पर निर्णय एक बहुत ही गम्भीर न्यायिक अभ्यास है और उक्त अभ्यास कभी भी आकस्मिक तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। हम यह कहकर अपनी चर्चा का समापन कर सकते हैं कि संशोधनों के लिए आवेदनों पर निर्णय लेते समय अदालतों को प्रामाणिक, वैध, ईमानदार और आवश्यक संशोधनों से इनकार नहीं करना चाहिए और कभी भी दुर्भावनापूर्ण, बेकार और/या असत संशोधनों की अनुमति नहीं देनी चाहिए।

**5.** किसी भी चर्चा से पहले, सी. पी. सी. के आदेश VI नियम 17 पर चर्चा करना उपयुक्त होगा, जो इस प्रकार हैः

**"17. याचिकाओं का संशोधन:-** न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी स्तर पर किसी पक्षकार को अपने अभिवचनों में ऐसी रीति से और ऐसी शर्तों पर जो न्यायसंगत हों, परिवर्तन करने या संशोधन करने की अनुमति दे सकता है और ऐसे सभी संशोधन किए जाएंगे जो पक्षकारों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्नों का निर्धारण करने के प्रयोजन के लिए आवश्यक हों:

बशर्ते कि मुकदमा शुरू होने के पश्चात संशोधन के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि विचारण इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती है कि उचित परिश्रम के बावजूद, पक्षकार मुकदमा शुरू होने से पहले मामले को नहीं उठा सकता था।"

**6.** सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के प्रावधान के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि न्यायालय को कार्यवाही के किसी भी चरण में अभिवचनों के संशोधन की अनुमति देने की शक्ति प्रदान की गई है, यदि न्यायालय का विचार है कि ऐसा संशोधन पक्षों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्नों को निर्धारित करने और पर्याप्त न्याय करने के उद्देश्य से आवश्यक है। यद्यपि नियम 17 के साथ संलग्न परन्तुक में यह प्रतिबंध लगाया गया है कि मुकदमा शुरू होने के पश्चात संशोधन के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी, यद्यपि यह विचारण पर छोड़ दिया गया है कि वह पक्ष को यह संतुष्ट होने पर संशोधन करने की अनुमति देने का आदेश दे कि उचित परिश्रम के बावजूद पक्ष मुकदमे के शुरू होने से पहले मामले को नहीं उठा सकते थे। कानून में यह तय प्रस्ताव है कि संशोधन अनिवार्य रूप से न्याय, समानता और सद्भावना का नियम है और संशोधन की शक्ति का उपयोग न्यायालय के समक्ष पक्षों को व्यापक हित में पर्याप्त न्याय देने के लिए किया जाना चाहिए। यह भी अच्छी तरह से तय किया गया है कि अदालतों को वाद की तुलना में लिखित बयान में संशोधन की अनुमति देने में बेहद उदार होना चाहिए और यह कि असंगत याचिकाएं या यहां तक कि बचाव का एक वैकल्पिक मामला

भी प्रतिवादी द्वारा लिखित बयान में उठाया जा सकता है जो अन्यथा वाद के मामले में अनुमेय नहीं है।

**7.** न्यायालय का क्षेत्राधिकार, सीपीसी की खंड 115 और भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत एक दूसरे के समान है। **राज कुमार भाटिया बनाम सुभाष चंदर भाटिया, (2018) 2 एस. सी. 87 में**, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि जहां न्यायालय ने VI नियम 17 सी. पी. सी. से अपनी क्षेत्राधिकार के सुविचारित प्रयोग में लिखित कथन के संशोधन की अनुज्ञा दी है, वहां अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा संशोधन में स्थापित किए जाने की मांग किए गए मामले के गुणों पर अनुच्छेद 227 से उच्च न्यायालय द्वारा उस आदेश में हस्तक्षेप करना अनुज्ञेय नहीं है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 7 और 12 प्रासंगिक हैं, जिन्हें निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया हैः-

"7. उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि लिखित कथन में माँगा गया संशोधन प्रामाणिक नहीं था और पक्षों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्न का निर्धारण करने के लिए आवश्यक नहीं था। मुकदमा 2001 में दायर किया गया था और लिखित बयान 2003 में दायर किया गया था।उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उन तथ्यों के आधार पर जो अपीलकर्ता को 2003 में ज्ञात थे, तेरह साल बाद 2016 में लिखित कथन में संशोधन करने के लिए एक विलंबित प्रयास किया गया था ताकि सहसम्पादक/हिंदू अविभाजित सम्पति के अस्तित्व पर एक कथन पेश किया जा सके। गुण-दोष पर, उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह एक स्थापित सिद्धान्त है कि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के अधिनियमन के पश्चात सम्पति जो किसी व्यक्ति को पैतृक पूर्वज से हस्तांतरित होती है, एचयूएफ सम्पति नहीं बन जाती है, लेकिन विरासत स्व-अर्जित सम्पति की प्रकृति में है जब तक कि हस्तांतरण के समय एचयूएफ मौजूद न हो।

यह दृष्टिकोण सी. डब्ल्यू. टी. बनाम चंदर सेन और युधिष्ठिर बनाम अशोक कुमार में इस न्यायालय के निर्णयों पर आधारित था। उच्च न्यायालय के विचार में, अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत किए जाने के लिए मांगे गए अभिकथन सह-सम्पति के अस्तित्व का निष्कर्ष नहीं निकालते हैं। यह स्वीकार करते हुए कि संशोधन के लिए एक आवेदन पर विचार करने के क्रम में, इसके गुण और अवगुणों का मूल्यांकन नहीं किया जाना चाहिए, उच्च न्यायालय ने फिर भी यह अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान मामले में संशोधन गुण के आधार पर असमर्थनीय था।

12. यह स्थिति होने के कारण, प्रस्तावित संशोधन में जिस मामले को स्थापित करने की मांग की गई थी, वह लिखित बयान में जो कहा गया था, उसका एक विस्तार था। उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 227 के से अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए मामले के गुण-दोषों को दर्ज किया है, जिसे अपीलकर्ता द्वारा संशोधन में स्थापित करने की मांग की गई थी। यह अस्वीकार्य है। संशोधन की अनुमति दी जानी चाहिए या नहीं, यह इस बात पर निर्भर नहीं करता है कि प्रस्तावित मामला अंततः विचारण में सफल होगा या नहीं। गुण-दोष की जांच करते हुए, उच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 227 के से अपने क्षेत्राधिकार की सीमाओं का उल्लंघन किया। साधना लोध बनाम राष्ट्रीय बीमा कंपनी (2003) 3 एस. सी. सी. 524 में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 227 से उच्च न्यायालय को प्रदत्त पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार मात्र यह देखने तक सीमित है कि क्या एक निम्न न्यायालय या अधिकरण ने अपनी क्षेत्राधिकार के मापदंडों के भीतर कार्यवाही की है। अनुच्छेद 227 के से अपनी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय एक अपील न्यायालय या न्यायाधिकरण के रूप में कार्य नहीं करता है और यह उन साक्ष्यों की समीक्षा या पुनर्मूल्यांकन करने के लिए खुला नहीं है, जिन पर निचली अदालत या न्यायाधिकरण ने आदेश पारित किया है। विचारण न्यायालय ने अपने क्षेत्राधिकार के सुविचारित प्रयोग में सीपीसी के आदेश 6 नियम 17 के से लिखित कथन में संशोधन की अनुमति दी थी। उच्च न्यायालय के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत

हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं था। संशोधन की अनुमति देना लिखित कथन (जैसा कि प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत किया गया है) में निहित स्वीकारोक्ति को वापस लेने के बराबर नहीं होगा क्योंकि संशोधन में मौजूदा बचाव पर विस्तार से चर्चा करने की मांग की गई थी। यह भी ध्यान दें करना आवश्यक होगा कि 21-9-2013 को वाद का संशोधन विचारण न्यायालय द्वारा अनुज्ञात किया गया था, जिसके पश्चात् अपीलकर्ता ने अपने बचाव को सम्मिलित करते हुए संशोधित वाद में लिखित कथन दाखिल किया था। संशोधन वादी के लिए कोई पूर्वाग्रह पैदा नहीं करेगा।

13. हमने जो दृष्टिकोण अपनाया है, उसमें अपीलकर्ता के वैकल्पिक प्रस्तुतीकरण पर विचार करना आवश्यक नहीं हो गया है, अर्थात्, विचारण न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण के लिए आवेदन दायर करने के पश्चात प्रतिवादी द्वारा अनुच्छेद 227 से क्षेत्राधिकार में लिया गया सहारा गलत समझा गया था। चूंकि मामले पर योग्यता के आधार पर बहस की गई है, इसलिए हमने प्रतिद्वंदी की दलीलों पर ध्यान दिया है।

13 इसलिए, तथ्यों के अवलोकन और अनुच्छेद 227 से क्षेत्राधिकार की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, जिसे उच्च न्यायालय प्रयोग करना चाहता था, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि आक्षेपित निर्णय और आदेश अस्थिर है। हम तदनुसार अपील की अनुमति देते हैं और उच्च न्यायालय के फैसले को अपास्त देते हैं। लिखित कथन में संशोधन की अनुमति देने वाले विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश की तदनुसार पुष्टि की जाती है।

**8.** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **ऊषा बालासाहेब स्वामी और अन्य बनाम किरण अप्पासो स्वामी और अन्य, ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1663 में** निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया हैः-

"18. यह समान रूप से अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि वाद के संशोधन के लिए प्रार्थना और लिखित कथन के संशोधन के लिए प्रार्थना अलग-

अलग आधारों पर खड़ी होती है। सामान्य सिद्धान्त कि अभिवचनों के संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती है ताकि वाद हेतु कारण या दावे की प्रकृति को भौतिक रूप से प्रतिस्थापित किया जा सके, वाद के संशोधनों पर लागू होता है। लिखित कथन के संशोधन से संबंधित सिद्धांतों में इसका कोई समकक्ष नहीं है। इसलिए, बचाव के एक नए आधार को जोड़ना या बचाव को प्रतिस्थापित करना या बदलना या लिखित बयान में असंगत याचिकाएं लेना आपत्तिजनक नहीं होगा, जबकि वाद में वाद हेतु एक नए कारण को जोड़ना, बदलना या प्रतिस्थापित करना आपत्तिजनक हो सकता है।

19. इस तरह से स्थापित कानून होने के नाते, हमें यह मानना चाहिए कि एक लिखित बयान के संशोधन के मामले में, अदालतें एक वाद की तुलना में संशोधन की अनुमति देने में अधिक उदार हैं क्योंकि पूर्वाग्रह का प्रश्न बाद के मामले की तुलना में पूर्व में बहुत कम होगा [देखें बी. के. नारायण पिल्लई बनाम परमेश्वरन पिल्लई (2000 (1) एससीसी 712) और बलदेव सिंह और अन्य बनाम मनोहर सिंह (2006 (6) एससीसी 498)]। यहां तक कि मोदी स्पिनिंग (ऊपर) में अभियोक्ता द्वारा भरोसा किया गया निर्णय भी स्पष्ट रूप से मानता है कि अभिवचनों में असंगत याचिकाएं ली जा सकती हैं। इस संदर्भ में, हम बसवन जग्गू धोबी बनाम सुखनंदन रामदास चौधरी (मृत) [1995 सप्लीमेंट (3) एससीसी 179] में इस न्यायालय के निर्णय का भी उल्लेख कर सकते हैं।उस मामले में, प्रतिवादी ने शुरू में यह रुख अपनाया था कि वह दूसरों के साथ एक संयुक्त किरायेदार था। इसके बाद, उन्होंने प्रस्तुत किया कि वह मौद्रिक विचार के लिए एक लाइसेंसधारी थे, जिन्हें बॉम्बे रेंट, होटल और लॉजिंग हाउस रेट कंट्रोल एक्ट, 1947 की धारा 15ए के प्रावधानों के अनुसार किरायेदार माना गया था। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी वैध रूप से इस तरह का असंगत बचाव कर सकता था। लिखित कथन के संशोधन की अनुमति देते हुए, इस न्यायालय ने बसवन जग्गू धोबी के मामले (उपर्युक्त) में निम्नलिखित टिप्पणी कीः-

"जहां तक पहले तर्क का संबंध है, हमें डर है कि निचली अदालतें यह ठहराने में गलत हो गई हैं कि प्रतिवादी के लिए आदेश 6 नियम 17 सीपीसी के से अपने बयान में संशोधन करने के लिए खुला नहीं है, जबकि मूल रूप से लिखित बयान में कहा गया था। यह एक प्रतिवादी के लिए विपरीत स्टैंड या विरोधाभासी स्टैंड लेने के लिए खुले कानून का विरोध करता है, कार्रवाई का कारण किसी भी तरह से प्रभावित नहीं है। यह मात्र उस वाद के मामले पर लागू होगा जिसमें संशोधन किया जा रहा है ताकि वाद हेतु एक नया कारण पेश किया जा सके।

20. जैसा कि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि लिखित कथन के संशोधन की अनुमति देने में एक उदार दृष्टिकोण एक सामान्य दृष्टिकोण है जब संशोधन की अनुमति देने की स्थिति में दूसरे पक्ष को धन के रूप में मुआवजा दिया जा सकता है। कानून की तकनीकी को पक्षों के बीच न्यायाधीश के प्रशासन में अदालतों को बाधित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। L.J. लीच एंड कंपनी लिमिटेड बनाम जार्डिन स्किनर एंड कंपनी [ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 357], इस न्यायालय ने कहा कि "न्यायालय लिखित कथन के संशोधन की अनुमति देने में अधिक उदार हैं क्योंकि उस घटना में पूर्वाग्रह का प्रश्न संचालित होने की संभावना कम है।" उस मामले में इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी को बचाव में वैकल्पिक याचिका लेने का अधिकार है, जो यद्यपि एक अपवाद के अधीन है कि प्रस्तावित संशोधन द्वारा दूसरे पक्ष को गम्भीर अन्याय के अधीन नहीं किया जाना चाहिए।"

**9.** वर्तमान मामले के तथ्यों पर लौटते हुए, संशोधन आवेदन के अवलोकन से पता चलेगा कि माँगा गया संशोधन स्पष्टीकरणात्मक प्रकृति का है और यह बचाव की प्रकृति को नहीं बदलता है और न ही यह रिवीजनकर्ता/वादी के लिए कोई पूर्वाग्रह पैदा करता है। इसके अलावा, विचारण अभी तक शुरू नहीं हुआ है क्योंकि मुद्दे तैयार नहीं किए गए हैं। जहाँ तक रिवीजनकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा

उद्धृत निर्णय का संबंध है, वही  रिवीजनकर्ता/वादी के लिए कोई मदद नहीं करता है, बल्कि यह उत्तरदाताओं/प्रतिवादियों के मामले को मजबूत करता है।

**10.** इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उषा बालासाहेब (उपर्युक्त) में निर्धारित विधि के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि निचली अदालत ने उत्तरदाताओं/प्रतिवादियों द्वारा दायर संशोधन आवेदन को अनुमति देने में कोई त्रुटि नहीं की है। यह स्थिति होने के कारण, संशोधन को खारिज किया जा सकता है।

**11.** तदनुसार, सिविल रिवीजन को खारिज कर दिया जाता है। प्रथम अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश (सी. डी.), देहरादून द्वारा मूल वाद सं. 82 वर्ष 2014 मे पारित विवादित आदेश दिनांक 11.10.2019, संशोधन आवेदन की अनुज्ञा देते हुए, को बरकरार रखा गया है।

**(लोक पाल सिंह, जे.)**

**01.07.2020**

रजनी